Q1. संविधियों के निर्वचन के बाह्य सहायक के रूप में संसदीय इतिहास की भूमिका की विवेचना कीजिए।

संविधियों के निर्वचन में संसदीय इतिहास की भूमिका (Role of Parliamentary History as external aid to interpretation of statutes)- प्राचीन आंग्ल विधि के अन्तर्गत किसी अधिनियमिति के निर्वचन के बाह्य सहयोगी के रूप में अधिनियमिति के संसदीय इतिहास को कोई महत्व नहीं दिया जाता था और न ही विधि आयोगों की आख्या को ही कोई विशेष महत्व दिया जाता था परन्तु आगे चलकर इसके महत्व को समझा गया तथा आयोगों की जाँच एवं आख्या पर ध्यान दिया जाने लगा तथा अधिनियमिति के संसदीय आशय को जानने के लिए बाह्य परिस्थितियों को भी सुसंगत माना जाने लगा तथा संसदीय कार्यवाही एवं मन्त्रियों के वक्तव्यों को भी महत्व दिया जाने लगा। संविधि के निर्वचन में संसदीय इतिहास की भूमिका के बाह्य उपकरण के रूप में सीधा समर्थन पेपर बनाम हार्ट, (1998) 1 Alld. FR (HL) के मामले में लॉर्ड ब्राउन विलकिंसन ने दिया था जिसमें उन्होंने यह अवधारित किया था कि संदिग्ध अथवा अस्पष्ट व्याकरणीय निर्वाचन में संसदीय मामलों के प्रसंग को अर्थान्वयन के सहायक उपकरण के रूप में स्वीकार किया जाना चाहिए।

आंग्ल विधि की तुलना में अमेरिकी विचारधारा प्रसंगों की प्रासंगिकता पर काफी लचीली है। यद्यपि वहाँ भी सामान्य रूप से कांग्रेस मन्त्रियों द्वारा संसद में की गयी चर्चाएँ अर्थान्वयन का मुख्य आधार नहीं मानी गयी हैं फिर भी उन्हें विश्वसनीय मार्गदर्शिका के रूप में अंगीकार किया गया है तथा विधेयक प्रस्तुत करते समय समितियों एवं उपसमितियों को प्रस्तुत की गयी आख्या को भी महत्वपूर्ण माना जाता है। अमेरिका में विधायी इतिहास को अर्थान्वयन में प्रयुक्त करने के लिए यद्यपि मतों में भिन्नता है फिर भी उसे प्रायोगिक रूप से महत्व दिया जाता रहा है।

भारतीय विधि की यह यथार्थता है कि वह ब्रिटिश विधि के समान्तर विकसित होती रही है। प्रीवी कौंसिल ने भी अपनी भूमिका में भारत, कनाडा आदि उपनिवेशों में प्रचलित विधि को निरूपित करने में लगभग वही दृष्टिकोण अपनाया जो ब्रिटिश विधि के अर्थान्वयन की परम्परा में प्रचलित था। भारतीय उच्चतम न्यायालय ने जब निर्वचन करना प्रारम्भ किया तो संसदीय इतिहास •की पारम्परिक अपवर्जन के सिद्धान्त को महत्व दिया जाता रहा परन्तु काफी अवसरों पर अर्थान्वयन में संदिग्धता निवारण हेतु विधायी इतिहास का अवलोकन सीमित रूप में किया जाता रहा।

भारत संघ बनाम हरभजन सिंह डिल्हा, 1972, S.C. 1061 के मामले में सम्पत्ति कर का निर्वचन करने में संसद सदस्यों की बहस को आधार माना गया तथा इन्दिरा साहनी बनाम भारत संघ, 1993 S.C. 477 के मामले में संविधान के अनुच्छेद 16 (4) के अर्थान्वयन में डॉ. अम्बेडकर के भाषण को मुख्य रूप से सन्दर्भित किया गया था तथा यह अवधारित किया गया कि संविधान निर्मात्री समिति के सदस्यों द्वारा की गयी बहस, संविधान के निर्वचन में एक सहायक उपकरण है, विशेषकर तब जबकि न्यायालय किसी प्रासंगिक प्रमुख प्रश्न पर आशय का अवलोकन करना चाहती है, तो उसे महत्व दिया जाना चाहिए । यद्यपि न्यायालय द्वारा साथ ही यह भी कहा गया कि बहस अथवा अम्बेडकर का भाषण निर्वचन का अन्तिम आधार नहीं है परन्तु आशय के लिए उसे भी देखा जा सकता है

इसी प्रकार, डॉ. आर. वाई. प्रभो बनाम श्री पी. के. कुनले, 1995, S.C. 11 के मामले में जन प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1951 की धारा 123 (3) के अर्थान्वयन में विधिमन्त्री के भाषण पर विस्तृत रूप से विचार किया गया।

इसी प्रकार, हल्दीराम भुजियावाला तथा अन्य बनाम आनन्द कुमार दीपक कुमार तथा अन्य, AWC 2000, इलाहबाद (2) 1310 के मामले में इलाहाबाद उच्च न्यायालय द्वारा अवधारित किया गया कि यदि किसी प्रावधान में संदिग्धता हो तो ऐसी दशा में विशेष समिति की रिपोर्ट को ध्यान में रखा जा सकता है।

इस प्रकार, स्पष्ट है कि किसी संविधि का निर्वचन करने में उस संविधि के संसदीय इतिहास को निर्वचन के बाह्य सहयोगी के रूप में महत्व देने के सम्बन्ध में यद्यपि मत विभिन्नता अवश्य है में परन्तु इसके महत्व को पूर्ण रूप से नकारा नहीं गया है तथा निर्वचन में इसका प्रयोग किया जाता रहा है।

PGS NATIONAL COLLEGE OF LAW

Q2. निर्वचन के आन्तरिक सहयोगी क्या है?

निर्वचन के आन्तरिक सहयोगी–न्यायालयों के समक्ष व्याख्याओं, अवधारणाओं एवं अभिव्यक्तियों का निर्वचन करते समय विभिन्न प्रकार की संदिग्धताएँ उत्पन्न होती रहती संदिग्धता को न्यायालय कानून के भीतर की ही विशिष्टयों की सहायता से निवारित करते हैं, इन्हीं विशिष्टयों को हम निर्वचन के आन्तरिक सहयोगियों के रूप में जानते व समझते हैं। कानून की । इस भाषा में इन विशिष्टियों का प्रयोग होता है तथा ये विशिष्टियाँ उसी कानून का भाग होती हैं। किसी भी न्यायालय को यह अधिकार प्राप्त नहीं है कि वह अभिव्यक्तियों का निर्वाचन अपने मनमाने ढंग से करे। अतः निर्वचन में इन आन्तरिक सहयोगियों द्वारा प्राप्त सहयोग न्यायालय द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्तों के जन्म का आधार है।

संक्षेप में निर्वचन के निम्नलिखित सहयोगी हैं

(1) लघु शीर्षक अथवा संक्षिप्त नाम-किसी कानून का लघु शीर्षक उस कानून को पहचानने की दृष्टि से उसका नामकरण मात्र है। यद्यपि यह उस कानून की एक विशिष्टि हैं, फिर भी उस कानून के किसी उपबन्ध को निर्वाचित करते समय इससे कोई सहायता नहीं ली जा सकती है। इसके द्वारा न तो किसी उपबन्ध को संक्षिप्त किया जा सकता है और न ही विस्तृत किया जा सकता है।

(2) दीर्घ शीर्षक अथवा विस्तृत नाम- किसी कानून का दीर्घ शीर्षक उस कानून का ही एक भाग होता है। निर्वचन करते समय न्यायालय निश्चित सीमा तक इसका सहयोग प्राप्त करते हैं। प्रत्येक कानून अपने नाम के पश्चात् दीर्घ शीर्षक से ही प्रारम्भ होता है। इसका हेतु उस कानून के उद्देश्य के बारे में एक सामान्य जानकारी देना है। दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973 का दीर्घ शीर्षक "दण्ड प्रक्रिया सम्बन्धी विधि का समेकन और संशोधन करने के लिए अधिनियम" है ।

अश्विनी कुमार बनाम अरविन्द बोस, A.I.R. 1952, S.C. 369 के मामले में याचिकाकर्ता उच्चतम न्यायालय एवं कलकत्ता उच्च न्यायालय दोनों का ही अधिवक्ता था। उसने रजिस्ट्री की मूल शाखा में स्वयं के पक्ष में अपने मुवक्किल की ओर से उपस्थित होने का समुचित आधार प्रस्तुत किया। इस आधार पर कि उच्च न्यायालय की मूल शाखा के नियम एवं आदेश के अन्तर्गत एक अधिवक्ता केवल अभिवाक् कर सकता है, कार्य नहीं, उसके आधार को वापिस कर दिया गया। याचिकाकर्ता का तर्क था कि उच्चतम न्यायालय का अधिवक्ता होने के कारण अपने पक्षकार से अनुदेश प्राप्त किये बिना ही अभिवाक् एवं कार्य दोनों ही कर सकने का अधिकारी है। उच्चतम न्यायालय ने इस तर्क को उच्चतम न्यायालय (उच्च न्यायालय में विधि व्यवसाय) अधिनियम, 1951 के इस दीर्घ शीर्षक के आधार पर स्वीकार कर लिया कि " अधिनियम जो उच्चतम न्यायालय के अधिवक्ताओं को किसी भी उच्च न्यायालय में अधिकार स्वरूप विधि व्यवसाय करने को प्राधिकृत करता है

केदारनाथ बनाम पश्चिम बंगाल राज्य, ALR. 1953, S.C. 404 के मामले में पश्चिम बंगाल आपराधिक विधि संशोधन अधिनियम, 1949 की धारा 4 के नि का प्रश्न था। इस के अन्तर्गत राज्य सरकार को यह चुनने का अधिकार प्राप्त था कि कौन से मामले निर्देश के लिए प्रक्रिया के अन्तर्गत विशेष न्यायालय द्वारा विचारणीय होंगे। इसे संविधान के अनुच्छेद 14 के अतिक्रमण के आधार पर चुनौती दी गयी उच्चतम न्यायालय द्वारा अवधारित किया गया कि इस अधिनियम का दीर्घ शीर्षक "अधिनियम जो कतिपय अपराधों का अधिक शीघ्र विवारण व अधिक प्रभावपूर्ण दण्ड का प्रबन्ध करता है" स्पष्टतः राज्य सरकार को विवेकाधिकार प्रदान करता है कि कौन-से अपराध विशेष न्यायालयों द्वारा विशेष प्रक्रिया के अन्तर्गत विचारणीय होने चाहिए।

(3) उद्देशिका अथवा प्रस्तावना - उद्देशिका भी उस कानून का एक भाग होती है तथा इसमें उस कानून के मुख्य उद्देश्यों का संक्षिप्त विवरण होता है इसलिए न्यायालयों द्वारा उसे आन्तरिक सहयोगी के रूप में स्वीकार किया गया है। उस कानून के किसी विशिष्ट उपबन्ध से यदि एक से अधिक अर्थ निकलते हों तो इसके वास्तविक अर्थ की जानकारी उद्देशिका से प्राप्त की जा सकती

PGS NATIONAL COLLEGE OF LAW

है। परन्तु यदि किसी अधिनियमिति की भाषा स्पष्ट एवं असंदिग्ध है, तो उद्देशिका की निर्वचन के आन्तरिक सहयोगी के रूप में कोई भूमिका नहीं है।

आत्म प्रकाश बनाम हरियाणा राज्य, A.I.R. 1986, S.C. 895 के मामले में उच्चतम न्यायालय द्वारा अवधारित किया गया कि चाहे संविधान की व्याख्या करनी हो अथवा किसी कानून की संवैधानिक प्रमाणिकता की जाँच करनी हो, एक प्रमुख नियम यह है कि संविधान की उद्देशिका को पथ-प्रदर्शक रोशनी तथा राज्य के नीति निर्देशक सिद्धान्तों को निर्वचन की पुस्तक के रूप में देखना चाहिए। उद्देशिका में लोक आशा और आकांक्षा अन्तर्निहित हैं तथा निर्देशक सिद्धान्त प्राप्त करने वाले उद्देश्यों को स्पष्ट करता है। जब संविधान के परिप्रेक्ष्य में कानूनों की जाँच की जानी होती है तो इन्हीं चश्मों की सहायता से न्यायालय को 'दूर दृष्टि' तथा 'निकट दृष्टि' देखनी होती है। संविधान के 'सुई जेनरिस' के होने के कारण जहाँ संवैधानिक विवाद्यकों पर ध्यान दिया जा रहा है तंग निर्वचनीय नियम, जो विधायी अधिनियमितियों के निर्वचन के लिए सुसंगत हैं, अयोग्य हो सकते हैं।

राष्ट्रीय मिल मजदूर संघ बनाम एन. टी. सी. (दक्षिण महाराष्ट्र) लिमिटेड, A.I.R. 1996, S.C. 710 के मामले में उच्चतम न्यायालय ने कपड़ा उपक्रम (प्रबन्ध ग्रहण) अधिनियम, 1983 के कतिपय उपबन्धों का निर्वचन करते हुए अवधारित किया कि जब किसी अधिनियम को भावा स्पष्ट हो तो अधिनियमिति की परिधि को संक्षिप्त अथवा सीमित करने के लिए उद्देशिका का उपयोग नहीं किया जा सकता।

रामाश्रय बनाम डिस्ट्रिक्ट पंचायत राज ऑफीसर गोरखपुर, A.L.R. 1998, इलाहाबाद 87 के मामले में इलाहाबाद उच्च न्यायालय द्वारा अवधारित किया गया है कि जहाँ किसी संविधि की भाषा स्पष्ट एवं असंदिग्ध हो वहाँ उसका शाब्दिक अर्थ ही ग्रहण किया जाना चाहिए, लेकिन यदि भाषा स्पष्ट नहीं हो तो विधायिका के आशय का पता लगाने के लिए प्रस्तावना आदि की सहायता ली जा सकती है।

(4) पाशर्व टिप्पण- किसी अधिनियम की धाराओं के प्रभाव को स्पष्ट करने के लिए उनकी बगल में लिखे जाने वाली टिप्पणी की पार्श्व टिप्पण कहा जाता है। पाश्व टिप्पण के अन्तर्गत उस धारा के उद्देश्य अंकित किये जाते हैं। सामान्य तौर पर पार्श्व टिप्पण का कोई भी योगदान निर्वचन करते समय नहीं लिया जाता। परन्तु जिन अधिनियमितियों के पार्श्व टिप्पण विधायिका द्वारा निविष्ट किये जाते हैं, उन अधिनियमितियों के पार्श्व टिप्पण की सहायता निर्वचन के समय ली जा सकती है। भारतीय संविधान में पार्श्व टिप्पण संविधान सभा द्वारा ही निविष्ट किये गये थे, इसलिए

एस. पी. गुप्ता बनाम राष्ट्रपति, A.I.R. 1982, S.C. 149 के मामले में उच्चतम न्यायालय द्वारा अवधारित किया गया कि, यदि किसी कानून में संबद्ध उपबन्ध दृढ़तापूर्वक ऐसे अर्थान्वयन किया जाना चाहिए। यदि उपबन्धों के अर्थ में किसी प्रकार की संदिग्धता हो, तो पाश्वं टिप्पण को अर्थान्वयन के सहयोगी के रूप में देखा जा सकता है।

(5) धाराओं के शीर्षक–किसी धारा अथवा धाराओं के सबसे ऊपरी भाग में उस धारा के शीर्षक को उल्लिखित किया जाता है। धारा या धाराओं के इस शीर्षक को न्यायालयों द्वारा इसे धारा या धाराओं की उद्देशिका माना गया है। यदि अधिनियमिति के अन्तर्गत किसी उपबन्ध के एक से अधिक अर्थ निकलते हों, तो निर्वचन के लिए शीर्षक की सहायता ली जा सकती है। परन्तु यदि भाषा स्पष्ट एवं असंदिग्ध हो तो शीर्षक से किसी प्रकार का सहयोग नहीं लिया जा सकता है।

मै. फ्रिक इण्डिया लिमिटेड बनाम भारत संघ, A.I.R. 1990, S.C. 689 के मामले में केन्द्रीय उत्पाद शुल्क और नमक अधिनियम, 1944 के कतिपय उपबन्धों का निर्वचन करते हुए उच्चतम न्यायालय ने अवधारित किया कि, यह भली-भाँति निश्चित है कि धाराओं अथवा प्रविष्टियों के सिरे पर लगे शीर्षक उपबन्ध के स्पष्ट शब्दों को नियन्त्रित नहीं कर सकते; उनसे उपबन्ध के अर्थान्वयन हेतु उस समय भी सहायता नहीं ली जा सकती जब उपबन्ध स्पष्ट एवं असंदिग्ध हैं; न ही उनका उपयोग उपबन्ध के स्पष्ट शब्दों के अर्थ परिवर्तित करने के लिए किया जा सकता है। उपवन्ध के अर्थान्वयन के लिए केवल शंका के निवारण हेतु शीर्षक की सहायता ली जा सकती है। प्रस्तुत मामले में अर्थान्वयन करने पर स्पष्ट होता है कि अधिनियम की प्रविष्टि 29 (क) की उप-प्रविष्टि (3) के लागू किये जाने की सीमा काफी विस्तृत है एवं वातानुकूल तथा प्रशीतन के उपकरणों तथा यन्त्रों के सभी

PGS NATIONAL COLLEGE OF LAW

प्रकार के भाग चाहे वे उप-प्रविष्टियों (1) तथा (2) के अन्तर्गत आते हों अथवा नहीं, इस उप-प्रविष्टि में सम्मिलित नहीं हैं। अतः वातानुकूलन अथवा प्रशीतन उपकरण निर्माता चाहे उपकरणों की एक इकाई के रूप में आपूर्ति करता है अथवा नहीं, प्रविष्टि 29 (क) की उप-प्रविष्टि (3) में उल्लिखित उपकरणों के भागों पर लगने वाले कर के लिए यह सुसंगत नहीं है।

(6) परिभाषा अथवा निर्वाचन खण्ड- सामान्यतया परिभाषा अथवा निर्वचन खण्ड किसी अधिनियमिति की प्रारम्भिक धाराओं में उपबन्धित किया जाता है जिसमें कि उस अधिनियमिति के अन्तर्गत प्रयुक्त किये गये शब्दों के अर्थों को स्पष्ट किया जाता है एवं परिभाषाओं को उल्लिखित किया जाता है। साधारणतः निर्वचन खण्ड में दिये गये किसी विशिष्ट शब्द के अर्थ का आशय यही है कि, उस कानून में जहाँ पर उस शब्द का प्रयोग हुआ है उसे निर्वाचन खण्ड में स्पष्ट किये गये अर्थ के अनुसार ही समझा जाये। जब भी शब्दों से अभिप्रेत है' अथवा 'अभिप्रेत है' को निर्वचन खण्ड में प्रयोग किया जाता है, तो वह कानून में उस शब्द का विस्तारित स्पष्टीकरण होता है। निर्वचन खण्ड में प्रयुक्त की गयी अभिव्यक्ति 'समझी गयी' एक कल्पना का सृजन करती है; अर्थात् कोई वस्तु जो वास्तव में नहीं है, उसे होना मान लिया जायेगा।

दिल्ली न्यायिक सेवा, तीस हजारी न्यायालय बनाम गुजरात राज्य, A.I.R. 1991, S.C. 2176 के मामले में उच्चतम न्यायालय के समक्ष संविधान के अनुच्छेद 129 में प्रयुक्त अभिव्यक्ति 'सहित' के निर्वचन का प्रश्न था । इस अनुच्छेद के अनुसार, "उच्चतम न्यायालय अभिलेख न्यायालय होगा और उसको अपने अवमान के लिए दण्ड देने की शक्ति सहित ऐसे न्यायालय की के सभी शक्तियाँ होंगी।"

इस सम्बन्ध में उच्चतम न्यायालय द्वारा अभिनिश्चित किया गया कि अभिव्यक्ति 'सहित' की प्रकृति प्रतिबन्धित न होकर व्यापक है। यदि संविधान निर्माताओं का आशय यह रहा होता कि उच्चतम न्यायालय को केवल अपने अवमान के लिए दण्ड देने की शक्ति होगी, तो इस अनुच्छेद में अभिव्यक्ति "अपने अवमान के लिए दण्ड देने की शक्ति सहित" के प्रयोग की आवश्यकता नहीं थी। यह अभिव्यक्ति फालतू अथवा अनावश्यक नहीं है, बल्कि इसके प्रयोग द्वारा यह स्पष्ट कर दिया गया है कि, उच्चतम न्यायालय के अधिकार क्षेत्र की परिधि इससे भी अधिक

विस्तृत है। अनुच्छेद की सुस्पष्ट भाषा से यह स्पष्ट है कि, उच्चतम न्यायालय की एक अभिलेख न्यायालय होने के कारण अपने अवमान के लिए दण्ड देने की शक्ति सहित अभिलेख न्यायालय की अन्तर्निहित अधिकारिता के अन्तर्गत अन्य सभी शक्तियाँ भी प्राप्त हैं।

महाराष्ट्र स्टेट इलेक्ट्रिसिटी बोर्ड बनाम अरविन्द पुरुषोत्तम जोशी, A.I.R. 1997, बम्बई 160 के मामले में बम्बई उच्च न्यायालय द्वारा अवधारित किया गया है कि, "एक संविधि में दी गई अभिव्यक्ति की परिभाषा को किसी दूसरी संविधि में की गई अभिव्यक्ति को निर्वचन में अंगीकृत नहीं किया जाना चाहिए।" इसका तात्पर्य स्पष्टतः यह हुआ कि एक की अभिव्यक्ति की परिभाषा विभिन्न संविधियों में भिन्न-भिन्न हो सकती है।

के. व्ही. मुथु बनाम अंग मुथु अम्माल, AIR 1997, S.C. 628 के मामले में उच्चतम न्यायालय द्वारा अवधारित किया गया कि परिभाषा खण्ड में से अभिप्रेत है' शब्दों का प्रयोग एक निश्चायक परिभाषा का द्योतक है, परन्तु यदि किसी अधिनियम का परिभाषा खण्ड, जिसके अन्तर्गत विभिन्न अभिव्यक्तियों की परिभाषा दी गयी है, "इस अधिनियम में, जब तक कि सन्दर्भ द्वारा अन्यथा दृष्टिगत न हो" शब्दों द्वारा प्रारम्भ किया गया हो, तो यह इस बात का द्योतक है कि वे परिभाषाएँ जो निश्चायक लग रही हों कदाचित निश्चायक न हों यदि उनके सन्दर्भ से ऐसा प्रतीत होता हो। इसका तात्पर्य यह हुआ कि परिभाषा का निर्वचन भी कानून में प्रयुक्त किसी अन्य शब्द की तरह ही अधिनियम के सन्दर्भ, योजना, उद्देश्य एवं प्रयोजन के परिपेक्ष्य में ही किया जायेगा।

(7) परन्तुक–किसी धारा में परन्तुक के जोड़े जाने की प्राकृतिक अवधारणा यही है कि, यदि परन्तुक जोड़ा न गया हो तो धारा का अधिनियमित भाग परन्तुक की विषय-वस्तु को स्वयं के अन्दर सम्मिलित कर लेता। परन्तुक का निर्वचन करते समय उसके शाब्दिक अर्थ पर नहीं जाना चाहिए, बल्कि उसे उस धारा के सन्दर्भ में लिया जाना चाहिए जिसे वह सापेक्ष करता है। यदि

PGS NATIONAL COLLEGE OF LAW

परन्तुक का युक्तियुक्त निर्वचन प्रमुख उपबन्ध के विपरीत परिणाम देता हो, तो परन्तुक को प्रमुख अधिनियमिति के ऊपर इस आधार पर प्रबल माना जाना चाहिए कि परन्तुक ही विधायिका का अन्तिम आशय है।

ए. एन. सहगल बनाम राजेराम शिवराम, A.I.R. 1991, S.C. 1406 के मामले में उच्चतम न्यायालय द्वारा अवधारित किया गया कि जहाँ मुख्य अधिनियमिति की भाषा स्पष्ट हो वहाँ परन्तुक मुख्य अधिनियमिति के निर्वचन में इस प्रकार प्रभाव नहीं डाल सकता कि जो कुछ स्पष्टतः मुख्य अधिनियमिति के अन्तर्गत आता हो उसे भी विवक्षित तौर पर वह हटा दे जब तक कि परन्तुक की भाषा ही इतनी सुस्पष्ट न हो कि उसका यही अर्थ निकलता हो। अतः परन्तुक की परिधि मुख्य अधिनियमिति से उस अपवाद को बाहर रखना होता है जो अन्यथा मुख्य नियम के अन्तर्गत होता।

त्रिभुवनहरिभाबी बनाम गुजरात राज्य अधिकरण, A.L.R. 1991, S.C. 1338 के भामले में उच्चतम न्यायालय द्वारा स्पष्ट किया गया कि कानून के किसी विशिष्ट उपबन्ध का परन्तुक केवल उसी विषय के बारे में होता है, जो मुख्य उपबन्ध द्वारा विवरणित किया गया हो। परन्तुक को उसी क्षेत्र में क्रियाशील होना पड़ता है और यदि मुख्य अधिनियमिति की भाषा स्पष्ट हो, तो परन्तुक न तो उसे विच्छेदित कर सकता है और न ही अधिनियमित के स्पष्ट रूप को समाप्त कर सकता है; अथवा उसके वास्तविक उद्देश्य को परिवर्तित कर सकता है जब तक कि परन्तुक की भाषा इतनी सुस्पष्ट न हो कि यही उसका वास्तविक प्रभाव हो ।

दुर्गापुर प्रोजेक्ट लि. बनाम ग्रेफाइट इण्डिया लि., A.L.R. 1998, कलकत्ता 319 के मामले में कलकत्ता उच्च न्यायालय द्वारा अवधारित किया गया है कि परन्तुक को मुख्य धारा के साथ • सामंजस्यपूर्ण अर्थों में ग्रहण किया जाना चाहिए। यह भी ध्यान में रखा जाना चाहिए कि परन्तुक कहीं मुख्य धारा के अर्थ को ही न बदल दे।

(8) उदाहरण अथवा दृष्टान्त-धाराओं के अन्तर्गत वर्णित विधि के उपबन्धों को और अधिक स्पष्ट करने के लिए उसके साथ कभी-कभी उदाहरण जोड़ दिये जाते हैं, परन्तु किसी स्पष्ट अधिनियमिति को उसमें उल्लिखित उदाहरणों के आधार पर विस्तृत अथवा सीमित अर्थ नहीं दिया जा सकता है।

महेश चन्द्र शर्मा बनाम राजकुमारी शर्मा, A.I.R. 1996, S.C. 869 के मामले में उच्चतम न्यायालय द्वारा स्पष्ट किया गया है कि दृष्टान्त धारा का ही भाग है और यह धारा के सिद्धान्तों को सुस्पष्ट करने में सहायक होता है।

(9) अपवाद एवं व्यावृत्ति खण्ड- सामान्यतया किसी अधिनियमिति में अपवाद ऐसी विषय वस्तु को अधिनियमिति के क्षेत्र से परे रखने के लिए निविष्ट किया जाता है जो, यदि ऐसा न किया जाता तो, अधिनियमिति के क्षेत्र में ही होता। व्यावृत्ति खण्ड सामान्यतया किसी कानून के निरसन व पुनः अधिनियमन की दशा में निविष्ट किये जाते हैं। प्रमुख उपबन्ध व अपवाद में आपस में असंगति अथवा विरोध के समय प्रमुख उपबन्ध को ही महत्वपूर्ण मानना चाहिए। कानून के प्रमुख भाग एवं व्यावृत्ति खण्ड में विरोध होने पर व्यावृत्ति खण्ड को स्वीकार नहीं किया जाना चाहिए।

(10) स्पष्टीकरण- उपबन्धों के अर्थों को सुस्पष्ट करने के उद्देश्य से तथा शंका एवं संदिग्धता दूर करने के आशय से स्पष्टीकरण निविष्ट किये जाते हैं। स्पष्टीकरण किसी उपबन्ध के अर्थ को विस्तारित नहीं करता, बल्कि उसके सही अर्थ को समझने में सहायता प्रदान करता है। प्रमुख उपबन्ध व उसके स्पष्टीकरण में विरोध होने पर न्यायालय को दोनों में सामंजस्य लाने का प्रयत्न करना चाहिए। जब कभी मुख्य धारा में अस्पष्टता अथवा संदिग्धता लगती हो तब वहाँ स्पष्टीकरण की सहायता से उसे दूर किया जा सकता है।

मै. ओब्लम इलेक्ट्रीकल इण्डस्ट्रीज प्रा. लि. हैदराबाद बनाम कलेक्टर ऑफ कस्टम्स, बम्बई, A.I.R. 1997, S.C. 3467 के मामले में उच्चतम न्यायालय द्वारा यह अवधारित किया गया है कि जहाँ कहीं मुख्य धारा के उपबन्धों तथा स्पष्टीकरण में संदिग्धता लगे वहाँ उसकी सामंजस्यपूर्ण व्याख्या किये जाने का प्रयास किया जाना चाहिए। इस मामले में उच्चतम न्यायालय

PGS NATIONAL COLLEGE OF LAW

द्वारा स्पष्ट किया गया कि सीमा शुल्क अधिनियम, 1962 की धारा 25 के अधीन जारी की गई अधिसूचना अभिव्यक्ति "उत्पादों के विनिर्माण के प्रयोग के लिए आयात हेतु अपेक्षित सामग्री " के अन्तर्गत ‘‘परिणामिक उत्पादों के विनिर्माण के लिए अपेक्षित सामग्री" भी सम्मिलित है। मुख्य उपबन्ध में ' किसी संदिग्धता को सुस्पष्ट करने के लिए स्पष्टीकरण (खण्ड viii) को सामंजस्य रूप में पढ़ा जाना चाहिए। अत: लाइटनिंग एरेस्टर के विनिर्माण के लिए आवश्यक क्राईस्टार वीम का आयात करने वाले अपीलार्थी को सीमा शुल्क एवं अतिरिक्त शुल्क से छूट प्राप्त करने का अधिकार है।

(11) अनुसूची अनुसूची उस कानून का भाग होती है जो अधिनियम में संलग्न अनुसूची सामान्यतया उस अधिनियम के अन्तर्गत माँग और अधिकारों का किस प्रकार निपटारा किया जाय अथवा शक्तियों का प्रयोग किस प्रकार किया जाय, बतलाती हैं। किसी धारा का निर्वचन करते समय इनकी सहायता ली जा सकती है। परन्तु यदि अधिनियम के उपबन्धों एवं अनुसूची की विषय वस्तु में विरोधाभास लगे तो अधिनियम के उपबन्धों को ही प्राथमिकता दी जानी चाहिए। इसके अलावा अनुसूचियों का प्रयोग केवल तभी किया जाना चाहिए जब मुख्य उपबन्धों की भाषा स्पष्ट एवं संदिग्ध हो ।

मै. ऐफाली फार्मास्यूटिकल लि. बनाम स्टेट ऑफ महाराष्ट्र, A.L.R. 1989, S.C. 2227 के मामले में उच्चतम न्यायालय ने अवधारित किया कि किसी अधिनियम की अनुसूची एवं मुख्य धारा में विरोध होने पर मुख्य धारा ही प्रबल रहती है एवं अनुसूची को अमान्य घोषित किया जाता है। न्यायालय द्वारा विनिश्चित किया गया कि आयुर्वेदिक औषधि अश्वगंधारिष्ट' जिसमें आत्म उत्पन्न मद्य (एलकोहल) रहता है परन्तु जिसे सामान्य मदिरा के रूप में नहीं पिया जाता, उत्पाद शुल्क से मुक्त होगी।

(12) विराम चिन्ह- हालांकि विरामादि चिन्ह किसी कानून की स्पष्ट भाषा व अर्थ को स्वतः अपने नियन्त्रण में नहीं रखते, फिर भी न्यायालय इसका ध्यान किसी शब्द के निर्वाचन के समय रखते हैं। परन्तु विरामादि-विधानों सहित निर्वचन करते समय यदि कोई निरर्थकता अथवा का बोध होता है तो न्यायालय सम्पूर्ण उपबन्ध को बिना विरामादि-विधानों के पढ़ेगा यदि उससे स्पष्ट हो तो विरामादि विधानों को कोई महत्व दिये बिना अर्थान्वयन कर देगा।

दादाजी बनाम सुखदेव, A.I.R. 1980, S.C. 150 के मामले में उच्चतम न्यायालय द्वारा अवधारित किया गया है कि यदि किसी संविधि की भाषा स्पष्ट, असंदिग्ध एवं निश्चित अर्थ देने वाली है तो विराम चिन्ह द्वारा उसे नियन्त्रित नहीं किया जा सकता है।

(13) खण्डनात्मक वाक्य खण्ड–संविधिओं की धाराओं के साथ बहुधा यह लिखा होता है कि, "इस अधिनियम में अन्यत्र किसी बात के होते हुये भी" यह वाक्य खण्ड अधिनियम के अन्य खण्डों पर अधिभावी होता है। अतः इस प्रकार की संविधि की व्याख्या करते समय इस वाक्य खण्ड पर अवश्य ध्यान दिया जाना चाहिए।

स्वप्न कुमार आचार्य बनाम सुभाष चन्द्र भट्टाचार्य, A.I.R. 1998, कलकत्ता 271 के मामले में कलकत्ता उच्च न्यायालय द्वारा अवधारित किया गया है कि व्याख्या के समय विवादित खण्डनात्मक वाक्य खण्ड को प्रभावी अर्थ दिया जाना चाहिए।

ए. जी. वरदराजूल बनाम स्टेट ऑफ तमिलनाडू, A.I.R. 1998, S.C. 1388 के मामले में उच्चतम न्यायालय द्वारा अवधारित किया गया है कि खण्डनात्मक वाक्य खण्ड, जिसके अन्तर्गत विधायिका किसी धारा को अध्यारोही प्रभाव देना चाहती है, के साथ संव्यवहार करते समय न्यायालय को इस बात का पता लगाने का प्रयास करना चाहिए कि विधायिका का आशय किस सीमा तक एक उपबन्ध को दूसरे उपबन्ध पर अध्यारोही प्रभाव देने का रहा है। इसका पता धारा के अधिनियमित भाग से लगाया जाना चाहिए।

Q3. आदेशात्मक एवं निदेशात्मक अधिनियामितियो से आप क्या समझते है? निर्णित वादों सहायता से समझाइए ।

PGS NATIONAL COLLEGE OF LAW

आदेशात्मक अथवा आज्ञापक अधिनियमिति–जिन अधिनियमितियों में विधायिका आशय आदेश देना अथवा आज्ञा देना होता है, उन्हें आदेशात्मक अथवा आज्ञापक अधिनिय मिति कहा जाता है। जैसे, यदि किसी अधिनियमिति में 'करेगा' शब्द अथवा अभिव्यक्ति 'अवश्य करना चाहिए' प्रयुक्त हुए हैं, तो इसका तात्पर्य यह है कि इसके उल्लिखित करने में विधायिका का आशय आदेश अथवा आज्ञा देना है।

कोई भी उपबन्ध अथवा अभिव्यक्ति आदेशात्मक होगी जब

1. उसका पालन न करने से कानून शून्य या अकृत हो जायेगा;
2. किसी कार्य के न किये जाने को कानून दण्डित करता है;
3. उसकी अनुपालना न करने पर अधिनियमिति का उद्देश्य समाप्त हो जायेगा; हो;
4. उसकी अनुपालना न करने पर कानून में अवैधानिकता उत्पन्न होती
5. यदि वह लोकहित को समर्थन देने वाली हो ।

निदेशात्मक अधिनियमिति—जिन अधिनियमितियों में विधायिका का आशय आज्ञा अथवा आदेश देना न हो, बल्कि मात्र निर्देश देना हो, उन्हें निदेशात्मक अधिनियमिति कहा जाता है। ये अधिनियमितियाँ 'कर सकता है' के रूप में होती हैं।

उस कानून को निदेशात्मक माना जाता है, जिसमें केवल निर्देश के विषय में उल्लेख किया • गया हो। इन अधिनियमितियों के सन्दर्भ में केवल अधिष्ठायी अनुपालना ही पर्याप्त होती है। यदि किन्हीं उपबन्धों का पालन नहीं किये जाने पर केवल अनियमितता ही उत्पन्न होती हो, तो ऐसी अधिनियमिति निदेशात्मक है। इसी प्रकार व्यक्ति हित को प्रोत्साहन देने वाली अधिनियमिति भी निदेशात्मक होती है। परन्तु जब लोकहित के कर्त्तव्य की अवहेलना के कारण केवल कठिनाई उत्पन्न होती हो, लेकिन उससे कोई वास्तविक अन्याय नहीं होता है, तो यह निदेशात्मक अधि नियमिति है।

आज्ञापक अधिनियमिति एवं निदेशात्मक अधिनियमिति के मध्य भेद करने का कोई विशेष मापदण्ड नहीं होता है।' कर सकता है' या 'करेगा' अथवा 'अवश्य करना चाहिए' विधायिका के • आशय को इंगित करते हैं। आज्ञापक अधिनियमितियाँ बाध्यकर होती हैं, परन्तु ऐसे कई आते हैं, जब न्यायालय ने 'कर सकता है' को 'करेगा' के रूप में तथा 'करेगा' को ' है' के रूप में निर्वाचित किया है, क्योंकि इसका निर्धारण उस कानून की परिधि एवं उसके उद्देश्य पर निर्भर करता है।

कुछ विषय महत्वपूर्ण होते हैं, जो विषय की जड़ तक जाते हैं तथा उन्हें तोड़ा नहीं जा सकता है। अन्य केवल निदेशात्मक हैं, जिनके कि तोड़ने को नजरन्दाज किया जा सकता है। यदि सम्पूर्ण रूप से पढ़े हुए नियमों का अधिष्ठायी अनुपालन किया गया हो और यदि कोई पूर्वाग्रह का परिणाम न निकलता हो; और जब विधायिका स्वयं यह अभिव्यक्त नहीं करती कि क्या क्या है तो न्यायालय को विषय को निर्धारित करना ही चाहिए, और एक सुन्दर विभेदीकरण व्यवहारित करते हुए. एक वर्ग को अन्य से व्यापक आधार की सामान्य बुद्धि एवं विवेक द्वारा निपटाना चाहिए।

कोई संविधि अथवा अधिनियम आदेशात्मक प्रकृति का है अथवा निदेशात्मक, यह निश्चित करने के लिये कोई नियम या सिद्धान्त निर्धारित नहीं है। इसका निर्धारण सामान्यत: दो बातों पर निर्भर करता है - एक तो, संविधि या अधिनियम में प्रयुक्त की गई भाषा तथा दूसरे, विधायिका का आशय अधिनियमों में उपबन्धों की पालना के सम्बन्ध में सामान्यतया निम्नलिखित शब्दों को प्रयुक्त किया जाता है-

(1) 'कर सकते हैं' (May) – यह शब्द अधिनियम के उपबन्धों के पालन के वैकल्पिक या विवेकाधीन होने का संकेत देते हैं, परन्तु यदि किसी संविधि द्वारा लोक प्राधिकारी को विवेकाधिकार दिया जाना है, लेकिन साथ-ही-साथ उस पर कोई दायित्व भी अधिरोपित किया जाता है, तो अभिव्यक्ति कर सकता है' की व्याख्या 'करेगा' अथवा 'अवश्य करना चाहिए' के रूप में की जानी चाहिए।

PGS NATIONAL COLLEGE OF LAW

(2) 'करेगा' (Shall) – जब किसी संविधि में 'करेगा' शब्द को प्रयुक्त किया जाता है, तो उसकी व्याख्या प्रथम दृष्टाया आज्ञापक उपबन्ध के रूप में की जानी चाहिए, परन्तु इस शब्द का अर्थ सदैव ही आदेशात्मक नहीं होता है। इसलिए उसकी व्याख्या संविधि के सन्दर्भ एवं उन परिस्थितियों पर निर्भर करती है, जिनमें उस शब्द को प्रयुक्त किया गया है।

(3) अवश्य करना चाहिए' (Must) -यदि किसी संविधि में अभिव्यक्ति 'अवश्य करना चाहिए' को प्रयुक्त किया गया है, तो उसे आदेशात्मक मानते हुये ही उसकी व्याख्या की जानी चाहिए। ऐसे उपबन्धों का अनुपालन अनिवार्यतः बाध्यकारी होता है।

(4) 'ऐसा करना विधियुक्त होगा' (It shall be law full)–अभिव्यक्ति 'ऐसा करना विधियुक्त होगा' कर्त्तव्यबोधक है। यह किसी कार्य को करने की शक्ति भी प्रदान करती है तथा साथ-ही-साथ उस कार्य को करने का दायित्व भी अधिरोपित करती है। यदि उसकी अनुपालना नहीं की जाती हैं, तो किया गया कार्य अविधिमान्य होगा।

(5) 'जैसा वह उचित समझे' (As he deems fit)—यह अभिव्यक्ति किसी कार्य को करने की विवेकाधीन शक्ति का संकेत देती है। यह न्यायालय के विवेक पर है कि वह किसी कार्य को करे या न करे, परन्तु इसका तात्पर्य स्वेच्छाचारिता से भी नहीं है अर्थात् न्यायालय अपनी विवेकाधीन शक्तियों का प्रयोग मानमाने तौर पर करने के लिये स्वतन्त्र नहीं है। न्यायालय को .अपनी विवेकाधीन शक्तियों का प्रयोग न्यायिक सिद्धान्तों के परिपेक्ष्य में करना होता है। यदि न्यायालय स्वेच्छाचारिता करता है, तो उसकी शक्तियाँ समाप्त हो जाती हैं।

स्वप्न कुमार बनाम सुभाष चन्द, A.I.R. 1998, कलकत्ता 271 के मामले में कलकत्ता उच्च न्यायालय द्वारा अवधारित किया गया कि न्यायालयों का यह कर्तव्य है कि वे संविधि के आदेशात्मक उपबन्धों का अनिवार्यतः पालन करें तथा उन्हीं के अनुरूप आदेश पारित करें। यदि आदेशात्मक उपबन्धों के प्रतिकूल कोई आदेश पारित किया जाता है, तो वह अविधिमान्य एवं आरम्भतः शून्य होगा। इसी प्रकार निदेशात्मक संविधि के सम्बन्ध में कलकत्ता उच्च न्यायालय ने ही एक अन्य वाद विजय कुमार विश्वास बनाम नवयुग लार्ज साइज को-ओपरेटिव एग्रीकल्चरल क्रेडिट सोसाइटी लि., A.I.R. 1998, कलकत्ता 216 में यह अवधारित किया कि यदि किसी संविधि में किसी लोक प्राधिकारी द्वारा शक्तियों का प्रयोग किये जाने के लिये कोई समय निर्धारित किया गया है, तो उसे आदेशात्मक नहीं माना जाकर निदेशात्मक माना जाना चाहिए।

केशव चन्द जोशी बनाम भारत संघ, A.L.R. 1991, S.C. 284 के मामले में उच्चतम न्यायालय द्वारा स्पष्ट किया गया कि, उत्तर प्रदेश वन सेवा नियम, 1952 के नियम, 27 के अन्तर्गत यदि राज्यपाल इस बात से सन्तुष्ट हों कि किसी विशिष्ट मामले में सदस्यों के सेवा नियम की शर्तों के किसी नियम के प्रवर्तन द्वारा किसी को अनुचित कष्ट होता है तो वह कोई भी नियम होने के बावजूद इस कष्ट को दूर करने के लिए लोक सेवा आयोग से परामर्श 'कर सकता है जिससे कष्ट समाप्त होकर उचित एवं समान परिणाम मिल सके। अभिव्यक्ति 'कर सकता है' को कानूनी कर्त्तव्य के पालन किये जाने के सन्दर्भ में प्रयुक्त किया गया है। राज्यपाल लोक सेवा आयोग से परामर्श करने के लिए बाध्य है। अतः अभिव्यक्ति 'कर सकता है' का वास्तविक अर्थ 'करेगा' के रूप में है एवं राज्यपाल पर यह विधिक दायित्व है कि, नियम के प्रवर्तन में छूट देने से पूर्व वह लोक सेवा आयोग से परामर्श करे।इसी मामले में न्यायालय ने यह भी स्पष्ट किया कि भर्ती के नियमों तथा सेवा शर्तों में अन्तर है। सेवा नियम, 1952 के नियम 5 (क) अथवा 5(ख) के अन्तर्गत भर्ती के नियम अथवा परिशिष्ट (क) अथवा (ख) के अनुसार सेवा में भर्ती के तरीके भर्ती के मूल नियम हैं एवं वे •नियम, 27 के अध्यधीन नहीं हैं।

रतनलाल अडूकिया बनाम भारत संघ, A.I.R. 1990, S.C. 104 के मामले में उच्चतम न्यायालय द्वारा अवधारित किया गया कि, रेलवे अधिनियम, 1890 की धारा 80 रेलवे के विरुद्ध प्रतिकर के वादों के सन्दर्भ में वाद का स्थान निश्चित करने के सम्बन्ध में एक सम्पूर्ण, स्वतः पूर्ण एवं सर्वांगीण संहिता है जो ऐसे वादों के लिए एक विशेष विधि बनाता है, जो आवश्यक विवक्षित तौर पर व्यवहार प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 20 तथा प्रेसीडेन्सी लघुवाद न्यायालय अधिनियम, 1892 की धारा 18 के उपबन्धों के प्रवर्तन को अलग करता है। रेलवे अधिनियम, 1890 की धारा 80 में प्रयुक्त अभिव्यक्ति "संस्थित किया जा सकता है" का प्रयोग "संस्थित किया जायेगा" के रूप में किया गया है।

PGS NATIONAL COLLEGE OF LAW

एम. वी. 'वाली-पैरो' में रुचि रखने वाले स्वामी एवं पक्षकार बनाम फर्नानडिओ लोपेज एवं अन्य, A.I.R. 1989, S.C. 2206 के मामले में उच्चतम न्यायालय द्वारा यह अवधारित किया गया कि कलकत्ता उच्च न्यायालय नियम, 1914 के नियम 4 में प्रयुक्त भाषा "अभिसाक्ष्य में दो गवाहों द्वारा हस्ताक्षर किये जायेंगे" में अभिव्यक्ति किये जायेंगे' निदेशात्मक रूप में प्रयुक्त की गई है, स्पष्ट किया गया कि यदि इसे आज्ञापक माना जाय, जिसे कार्यान्वित न किया जाना अभिसाक्ष्य को शून्य कर देगा, तो उस समय भी न्याय की अवमानना की परिस्थिति होगी जब गवाह के द्वारा हस्ताक्षर न किया जाना उपेक्षा के कारण हुआ हो, जबकि अभिसाक्ष्य की सत्यता एवं उसकी प्रामाणिकता निश्चित हो। दूसरी ओर यदि अभिव्यक्ति को निदेशात्मक माना जाय तो जहाँ लोप कोई प्रतिकूलता उत्पन्न न करे तथा त्रुटि केवल तकनीकी हो तो न्यायालय घोर अन्याय को रोकने में सक्षम रहेगा। इस उपबन्ध का उद्देश्य केवल अभिसाक्ष्य की सत्यता के लिए गवाह को पाबन्द करना होने के कारण इस उद्देश्य की प्राप्ति अभिव्यक्ति 'किये जायेंगे' को निशात्मक ही होगी। किसी ऐसे मामले में जहाँ किसी गवाह का अभिसाक्ष्य विवादित हो जाता है तो न्यायालय इस बात के लिए स्वतन्त्र हैं कि वे अभिसाक्ष्य पर गवाह के हस्ताक्षर के लोप के प्रभाव का परीक्षण करें तथा यदि ऐसा करने से उपलब्ध सामग्री के आधार पर अभिसाक्ष्य सत्यता एवं विश्वसनीयता प्राप्त नहीं करता है तो न्यायालय ऐसे साक्ष्य को रद्द कर सकता है।

PGS NATIONAL COLLEGE OF LAW